प्रवचन नं. २८ श्लोक - १६ से २०, विक्रम संवत् २०१७, श्रावण कृष्ण १५ शनिवार, दिनांक ०९-०९-१९६१

वस्तु आत्मा निर्लेप शुद्ध अबन्ध अखण्ड आनन्दकन्द है, कोई संयोगरहित, विकल्प अर्थात् रागरहित और गुण-गुणी के भेद भी जिसकी चीज में नहीं है — ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि करके प्रथम सम्यग्दर्शन महा चीज रत्न समान इसे प्रथम प्रगट करना चाहिए और फिर इसे श्रावकपने के लिये प्रयत्न करके चारित्र भी आंशिक श्रावक को हो, वह अंगीकार करना चाहिए — ऐसे श्रावक को षट्कर्म प्रतिदिन होते हैं, उसका अधिकार चलता है। समझ में आया?

श्रावक का को प्रतिदिन षट्कर्म होते हैं। पहली देव पूजा की बात हुई, वह हमेशा प्रतिदिन देव की पूजा करे। भाई! कल यह बात आयी थी, तुम उस दिन नहीं थे, उस दिन नहीं थे अर्थात् उस दिवस नहीं थे। यहाँ कहते हैं कि भगवान की पूजा, देव भी महा पूजन करते हैं और मुनि भी भगवान की स्तुति ऐसी करते हैं, ऐसी भक्ति करते हैं, शुभभाव हो, तब ऐसी भक्ति परमात्मा की आये बिना नहीं रहती। धर्मी उसे पुण्यबन्ध का कारण जानता है। समझ में आया? परन्तु ऐसा भाव सम्यग्दृष्टि धर्मी को, वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा जैन परमेश्वर के प्रति वात्सल्य का भाव आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

ऋषभदेव का वर्णन पहले अपने किया था। एक बार मुम्बई (संवत्) २०१३ के साल दोपहर में (वर्णन किया था)। ऋषभस्तोत्र है, वह स्वयं पद्मनन्दि आचार्य ने बनाया है। भगवान! तेरी भक्ति की क्या बात करें! हमें तो ऐसा लगता है कि चन्द्रमा के अन्दर जो देव हैं, वे जब आपकी-सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर की स्तुति और भक्ति ऐसी वीणा द्वारा करते हैं, उनकी स्तुति और स्तवन के रसिक हिरण... हिरण समझते हो? मृग। वे हिरण वहाँ सुनने चन्द्रमा में चिपटा है, प्रभु! वह हिरण वहाँ सुनने गया है। इतनी भक्ति! मुनि स्वयं पद्मनन्दि आचार्य भावलिंगी सन्त हैं। आत्मा के अमृत के घूँट पीते हैं। चारित्र की दशा है, भावलिंग है, बाह्य द्रव्यलिंग नग्नदशा जिन्हें होती है; दूसरी दशा उन्हें नहीं हो सकती।

ऐसे मुनि भी यह कहते हैं कि प्रभु! आपकी भक्ति के गीत चन्द्रमा के देव गाते हैं, उस वीणा की.... उसके स्तवन सुनने हिरण उड़कर वहाँ गया लगता है। वह हिरण का चिह्न चन्द्रमा में दिखता है न? ऐसा कहकर भक्त जहाँ हो, वहाँ परमात्मा की भक्ति को ही देखते हैं। ऐसा भाव श्रावक को आये बिना नहीं रहता और ऐसा भक्ति का भाव न आवे तो उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान का ठिकाना नहीं है। समझ में आया? और तो भी सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्रगट हुआ, उसे ऐसा भाव आवे, उसे सम्यग्दृष्टि समझता है कि पाप से बचने का यह एक शुभभाव है और धर्म में निमित्तरूप से उसे कहने में आता है। समझ में आया? यह भक्ति करते हैं, लो! भक्ति है या नहीं शास्त्र में? फिर कितने ही ऐसा कहते हैं कि भगवान की भक्ति करे, उसे मिथ्यात्व लगता है — ऐसा सोनगढ़वाले कहते हैं। प्रभु! क्या कहता है तू? आहा...हा...! भाई! भगवान की भक्ति का जो शुभराग (आया), वह मिथ्यात्व नहीं है, वह तो सम्यग्दृष्टि को और मुनियों-कुन्दकुन्दाचार्य जैसे को भी भगवान की भक्ति (आती है)। तीर्थयात्रा के लिये निकले नहीं थे?

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज स्वयं (ही कहते हैं) '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ के आश्रय सम्यग्दर्शन होता है और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन टिकता है और उसके आश्रय से स्थिरता बढ़ती है। ऐसा कहनेवाले भी भगवान की यात्रा के लिये-गिरनार (पर्वत पर) नेमिनाथ भगवान की यात्रा के लिये निकले थे। वह भाव शुभ है, वह मिथ्यात्व नहीं है तथा संवर और निर्जरा का कारण नहीं है। मात्र उस शुभभाव में यदि ऐसा माने कि मुझे इसमें संवर-निर्जरा होती है तो वह दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया? वह शुभभाव तो मुनि को भी होता है और यहाँ श्रावक को तो मुख्य होता है। यहाँ अन्त में यह आया, देखो!

धर्म '**धर्मार्थकाममोक्षाणामादौ धर्मः प्रकीर्तितः**' १७ वीं गाथा। कहते हैं कि श्रावकों के लिये भगवान ने धर्म अर्थात् पुण्य-शुभभाव / व्यवहार धर्म; अर्थ अर्थात् लक्ष्मी; काम अर्थात् विषय; मोक्ष अर्थात् अनाकुल शान्ति का साधन। इसमें श्रावक के लिये गणधरों से भी पुण्यरूपी व्यवहारधर्म को मुख्य कहने में आया है। भाई! है न? १७ वीं गाथा देखो। **क्योंकि गणधर आदि महापुरुषों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष — इन चार पुरुषार्थों में धर्म का ही सबसे प्रथम निरुपण किया है....** इसका अर्थ — दृष्टि में तो मुख्य

द्रव्यस्वभाव है। यह तो बर्तन की अपेक्षा की बात चलती है। इसमें समझ में आया? दृष्टि की अपेक्षा से तो मुख्य, वह निश्चय; उसमें तीन काल में समकिती को, श्रावक को या मुनि को बदलता नहीं। निश्चय, वह मुख्य — ऐसा नहीं तथा पुण्यधर्म, वह मुख्य — ऐसा नहीं परन्तु मुख्य, वह निश्चय। समझ में आया? निश्चय, वह मुख्य नहीं; निश्चय तो आत्मद्रव्य है, उसकी गुण-शक्तियाँ हैं, उनकी पर्याय है, वह सब निश्चय है, क्योंकि स्वाश्रय में रही हुई चीज को निश्चय कहा जाता है और पर स्थित चीज को व्यवहार कहा जाता है।

अब इसके अन्दर भी जो द्रव्य-गुण और पर्याय — भगवान आत्मा परमब्रह्मस्वरूप, उसकी शक्तियाँ-गुण और उसकी दशा, इन तीन में भी मुख्य तो द्रव्य है। वह मुख्य द्रव्य, उसे निश्चय कहकर उसके आश्रय से आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, वह मुख्य दृष्टि तो तीन काल-तीन लोक में समकिती की, श्रावक की, या मुनि की कभी बदलती नहीं और वह मुख्यदृष्टि बदले और मुख्यता में पुण्य का भाव, पर्यायभाव, गुण-गुणीभाव, वह मुख्यता यदि आ जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। यह तो यहाँ मुख्य कहा है न, वह अपेक्षा से बात चलती है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में मुख्य चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक का मुख्यपना सम्यग्दृष्टि को तीन काल-तीन लोक में कभी बदलता नहीं और उस मुख्यपनेरहित दूसरे की मुख्यता यदि दृष्टि में आ जाये तो उसकी दृष्टि सम्यक् न रहकर मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया?

यहाँ जो कहा है कि '**धर्मार्थकाममोक्षाणामादौ धर्मः प्रकीर्तितः**' यह तो अशुभभाव और शुभभाव — ऐसा जो वर्तन, उसमें वर्तन में उसे शुभभाव की, धर्म की-व्यवहारधर्म की मुख्यता कहने में आयी है। समझ में आता है? यह तो गुजराती चलती है। गुजराती समझ में आये ऐसी है, गुजराती थोड़ा सा समझना चाहिए। कैलाशचन्द्रजी ने पहले एक लेख लिखा था, भाई! अपने महाराज के पास सुनने जाना हो तो गुजराती सीखकर जाना क्योंकि उनकी भाषा गुजराती-काठियावाड़ी है। हम उनसे हिन्दी बुलवाना (चाहते हैं परन्तु) जो उनकी भाषा में बात आती है, वह हिन्दी में नहीं आती। कैलाशचन्द्रजी ने लेख लिखा था। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, श्रावक / सम्यग्दृष्टि / ज्ञानी, गृहस्थाश्रम में रहा हुआ, अभी आरम्भ-परिग्रह में भाववाला जीव है, उसे प्रात:काल उठकर पहले जिनेन्द्रदेव के दर्शन करना। भाई! परन्तु हम सम्यग्दृष्टि नहीं, हमारे क्या? परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो, उसे भी ऐसा भगवान के दर्शन आदि का भाव आये बिना नहीं रहता। सच्चे देव-सच्चे गुरु-सच्चे शास्त्र की भक्ति उसे आती है परन्तु वह पुण्यभाव का भाव है। उसके आश्रय से संवर, निर्जरा या मोक्ष का मार्ग नहीं होता, तथापि वह आये बिना नहीं रहता तो भी वह मिथ्यात्वभाव नहीं है परन्तु उसे उड़ाता है, वहाँ तो व्यवहार को मिथ्यात्व कहता है। अरे...! भगवान! यह तू क्या कहता है? कितने ही (ऐसा कहते हैं) यह तो व्यवहार को मिथ्यात्व कहते हैं। दान देना, दान करना, दया पालना, भक्ति करना, पूजा करना, यह तो मिथ्यात्व कहते हैं। अरे प्रभु! तू यह क्या करता है? किसे यह उलहाना देता है और तेरे आत्मा में कहाँ तुझे करना क्या है? समझ में आया? ऐसा नहीं होता भाई!

महामुनि गणधर जैसे चार ज्ञान और चौदह पूर्व जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में प्रगट दशा होती है, वे भगवान की स्तुति और भक्ति करें और भगवान की वाणी सुनते हैं। समझ में आया? भगवान का ऐसा दिव्यध्वनि का प्रपात खिरता हो। प्रभु! क्या कहते हैं? जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में चौदहपूर्व की रचना की सामर्थ्य है और रचना की है। अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग रचे और दीक्षित होकर अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान प्रगट हुए। उन भगवान की दिव्यध्वनि में बारह अंग में क्या बाकी रह गया था? अरे! इनकी भक्ति सर्वज्ञ की वाणी के प्रति उछले बिना नहीं रहती और फिर भी वे भगवान के पास सुनते, क्षण में सप्तम गुणस्थान आ जाता है। ख्याल भी नहीं रहता कि भगवान क्या कहते हैं? फिर छठवाँ आ जाता है, छठवाँ आवे तब विकल्प उठकर सुनते हैं, भगवान यह कहते हैं, फिर क्षण में सातवाँ-अप्रमत्तदशा आ जाती है।

मुनि की दशा ही ऐसी छठवें और सातवें की क्षण-क्षण में परिवर्तित होती है और ऐसी दशा सातवें की न आवे तो वह मुनिपना उसे हो नहीं सकता। वह सातवाँ आवे तब बात का लक्ष्य जाये, तथापि उसके स्वरूप की दृष्टि है, चारित्र है, वह छठवें में लक्ष्य आया और सातवें में गया, तथापि उसकी सन्धि सब हो जाती है। भगवान की वाणी में क्या आया

— उसकी सन्धि उसके ख्याल में आ जाती है। क्योंकि परमात्मा को स्पर्श कर बाहर छठवें में निकला, तब सातवें में क्या कहा गया था — यह सब सन्धि उसमें आ जाती है। उसे सन्धि छूटती नहीं है। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं — गृहस्थाश्रम में रहनेवाले श्रावक को हमेशा भगवान के दर्शन करना, गुरु के दर्शन करना। देखो, करना... करना... करना... ऐसा लिखा है। व्यवहारनय के कथन में क्या आये? समझ में आया? इसका अर्थ कि धर्मी जीव को ऐसे देव और गुरु के दर्शन का भाव प्रतिदिन आये बिना नहीं रहता। उसे व्यवहारनय के कथन में ऐसा आता है कि इसे करना। समझ में आया? वास्तव में तो यह कर्तृत्वबुद्धि भी समकिती को नहीं होती। कर्तृत्वबुद्धि नहीं होती परन्तु वह आता है और परिणमता है; इसलिए करता है — ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? गजब बात....

कहते हैं अहो! **भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना स्तुति भी करनी चाहिए....** भगवान और गुरु की। **धर्म का श्रवण भी करना चाहिए, इनके पीछे अन्य गृह आदि संबंधी कार्य करने योग्य है....** करने योग्य (कहा परन्तु) यह तो कल बात की थी। फिर तू जान तेरा, परन्तु पहले तो यह करना। शास्त्र कथन आवे वह तो ऐसा ही आता है न? करना। समझ में आया? व्यवहार से कथन (आता है)। कंजूस का एक अधिकार कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्र में है। वहाँ तो ऐसा कहा, स्वामी कार्तिकेय, बहुत प्राचीन, वे तो कुन्दकुन्दाचार्य से पहले हुए। बाईस सौ वर्ष पहले। उन्होंने एक श्लोक ऐसा अन्दर लिखा है अरे...! कंजूस! तुझे यह लक्ष्मी मिली, उसे खाना। दान देना न आवे, दूसरा करना न आवे परन्तु खाना, तो तुझे ऐसा रहेगा कि मैंने कुछ संकोच (कंजूसी) खाने में तो नहीं की। भाई! समझ में आया?

महामुनि छठवें गुणस्थान में विराजमान, जिन्हें किसी के आरम्भ का अनुमोदन सम्मत नहीं होता परन्तु उसमें कहने का आशय दूसरा है कि कुछ खा तो सही। मर जायेगा और इकट्ठा किया... समझ में आया? मक्खी ने शहद किया, आता है न? एकत्रित किया न दान दिया, लूटनेवाले ने लूट लिया। अभी एक बड़ा आया मधु... वे छत्ता ले गये तो उड़ गये सब लेकर, आता है न? वह स्तुति में आता है।

माखीओये मध कीधुं न खाधुं न दान दीधुं,
अे लुटनारे लुटी लीधुं रे पामर प्राणी॥

ढेर इकट्ठे किये... किये नहीं, हों! वे तो हुए, पूर्व के पुण्य के कारण हुए और इकट्ठा किया और यदि खायेगा नहीं न, तो तुझे मरते समय ऐसा होगा कि अरे...रे! खाया भी नहीं, पीया भी नहीं। स्वामी कार्तिकेय, महासमर्थ मुनि, भावलिंगी सन्त (ऐसा कहते हैं) जरा खा, इतना भी यदि राग मन्द करेगा तो मरते समय इसे याद आयेगा कि हमने दूसरा नहीं (किया) परन्तु खाया-पीया और जरा सा उड़ाया तो है — ऐसे के ऐसे कंजूस की तरह खाने-पीने के ठिकाने नहीं, खाने के ठिकाने नहीं-पीने के ठिकाने नहीं... कंजूस और कंजूस। किसी को दिया नहीं, इसकी अपेक्षा तो अच्छा है - ऐसा तुझे लगेगा, ऐसा। कितने शुभभाव की कोमलता बताने को ऐसा कथन किया है। ओहो!

एक ओर समयसार में आचार्य कहते हैं कि कुशील—व्यवहार पुण्य—परिणाम वह कुशील है और जो संसार में प्रवेश करावे, उसे धर्मी मन-वचन-काया से सम्मत नहीं होता। आहा...हा...! आता है न? समयसार, पुण्य-पाप अधिकार। धर्मी मन से-वचन से-काया से वह शुभभावरूपी पुण्य को अच्छा है-ठीक है — ऐसा नहीं कहेगा। समझ में आया? ऐसा पुण्य-पाप अधिकार में वर्णन किया है। वह के वही मुनि अवसर आवे तब कहते हैं, यह व्यवहार इस प्रकार का राग घटाने के लिये कथन आता है। निश्चय में उसका अनुमोदन और सम्मत हो सकता नहीं। समझ में आया?

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं भाई! प्रात:काल उठकर हमेशा भगवान के दर्शन करना, हों! आया था कोई कि आज मैं आया हूँ, वहाँ कहना महाराज को, मन्दिर में आज आया हूँ। ऐसे सब यहाँ बात तुम्हारी सब लेकर आते हैं। कौन था? कोई था। यहाँ कहते हैं — भगवान के दर्शन, गुरु के दर्शन और शास्त्र का श्रवण प्रात:काल श्रावक को पहले होना चाहिए। फिर जगत के दूसरे काम व्यापार-धन्धे के होते हैं। यह पाठ है, हों! **'पश्चादन्यानि कार्याणि कर्तव्यानि'** फिर दूसरे काम करना परन्तु पहला काम दूसरा करना नहीं। इसका अर्थ — आचार्यों की शैली उपदेश की पद्धति के भाव में कि पहला ऐसा भाव श्रावक को आये बिना नहीं रहता। अशुभ से बचने को शुभभाव में कषाय के मन्द होने में (ऐसा भाव आता है) समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, गणधर आदि महापुरुषों ने धर्म अर्थात् पुण्य, लक्ष्मी और भोग तथा मोक्ष **इन चार पुरुषार्थों में धर्म का ही सबसे प्रथम निरूपण किया है तथा उसी को मुख्य माना है।** किस अपेक्षा से ? यह मुख्यपना आया, उसरूप कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को मुख्य वह निश्चय है। त्रिकाल द्रव्य का आश्रय दृष्टि में से छूटे तो वह सम्यग्दर्शन नहीं रह सकता। यहाँ कहते हैं कि वर्तन में अशुभपरिणाम की अपेक्षा से श्रावक को शुभपरिणाम-आचरण की अपेक्षा से मुख्य है। वैसे तो स्थिरता और दृष्टि आत्मा के आश्रय से पड़ी है, वह तो है ही। अशुभ को टालने के लिये उस श्रावक को शुभभाव मुख्य होता है। कहो, समझ में आया ?

यह १७ वीं गाथा (पूरी) हुई। ओहो ! समन्तभद्र, लो ! ऐसे स्वयंभूस्तोत्र बनाया है देखो ! आगम, स्तुति के बहाने आगम। स्वयंभूस्तोत्र, समन्तभद्राचार्य, चौबीस तीर्थंकर का (स्तवन) स्तुति के बहाने आगम रच दिया है। निश्चय और व्यवहार तथा अभ्यन्तर और बाह्य और कितना-कैसे तत्त्व, (उसकी) बहुत अलौकिक बात ! महामुनि भी भगवान की स्तुति और भक्ति करते थे तो श्रावक की हद तो बहुत नीची है, उसे तो खास भगवान के दर्शन आदि पहला कर्तव्य उसका यह है। अब दूसरा कर्तव्य-गुरु सेवा। अब दूसरा कर्तव्य।

श्लोक - १८

गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञानलोचनम्।
समस्तं दश्यते येन हस्तरेखेव निस्तुषम्॥१८॥

अर्थ : जिस केवलज्ञानरूपी लोचन से समस्त पदार्थ हाथ की रेखा के समान प्रगट रीति से देखने में आते हैं ऐसा ज्ञानरूपी नेत्र निर्ग्रन्थ गुरुओं की कृपा से ही प्राप्त होता है, इसलिए ज्ञान के आकांक्षी मनुष्यों को भक्तिपूर्वक गुरुओं की सेवा, वंदना आदि करनी चाहिए॥१८॥

श्लोक १८ पर प्रवचन

कहते हैं **जिस केवलज्ञानरूपी लोचन से....** भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा, जिनकी केवलज्ञानरूपी आँख खुल गयी है, सर्व चक्षु खुल गयी है, उन्होंने **समस्त पदार्थ हाथ की रेखा के समान....** ऐसे रेखा जैसे दिखती है, वैसे जगत के पदार्थ, भगवान त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने केवलज्ञान में आदि, मध्य और अन्त अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य, तीनों काल जिन्होंने हस्तामलकवत् देख लिये हैं। **रेखा के समान प्रगट रीति से देखने में आते हैं....** कहो, ठीक होगा ? कि यह भगवान कुछ नहीं देखते होंगे ? भविष्य का देखते होंगे ? भविष्य की अन्तिम पर्याय, अन्तिम समझते हैं ? आखिर की। कहो, अन्तिम पर्याय देखते हैं, भगवान ? भगवान अन्तिम पर्याय नहीं देखते तो इतनी तो कमी हुई या नहीं भगवान में ? भूतकाल की पहली पर्याय कौन सी थी ? वह तो भगवान ने नहीं देखी। अरे... ! सुन तो सही अब। ऐसे गप्प, गप्प मारते हैं।

भगवान अनादि-अनन्त जितनी द्रव्य की पर्याय है, जितने समय, जितनी पर्याय वह सब भगवान ने देखी है। पहली पर्याय कब थी, वह पहली देखे ? और अन्तिम पर्याय कब थी, वह अन्तिम देखे ? अनादि-अनन्त है। अन्तिम का अन्त नहीं और पहली की शुरुआत नहीं।

अब ऐसे केवलज्ञान में तर्क करने लगे हैं, कि केवलज्ञानी देखते अवश्य हैं परन्तु भविष्य की पर्याय नहीं देखते। भविष्य की कौन सी ? अन्तिम। परन्तु अन्तिम पर्याय कौन सी होती है ? तब अन्तिम पर्याय तो द्रव्य (का) अन्त हो गया न ? द्रव्य रहा नहीं। द्रव्य तो अनादि-अनन्त है। वस्तु अनादि-अनन्त है, उसकी पर्याय भी अनादि-अनन्त है। जैसी आदि और अन्त रहित है, वैसे भगवान ने देखी है, कुछ बाकी रहा नहीं — ऐसे भगवान अरहन्त को भी जो पहचानता नहीं है।

कहते हैं कि ऐसे भगवान में जो **हाथ की रेखा के समान प्रगट रीति से देखने में आते हैं ऐसा ज्ञानरूपी नेत्र निर्ग्रन्थ गुरुओं की कृपा से ही प्राप्त होता है,....** कहो, समझ में आया ? मुनि की मुख्यता ली है न ? महा निर्ग्रन्थ मुनि, जिनकी दृष्टि निर्ग्रन्थ वीतरागी

हुई है, जिनके स्वरूप में-स्थिरता में ऐसा सातवाँ और छठा, सातवाँ झूला झूलते हैं। सातवें में आने पर मानो मोक्ष ही हो गया। मैं अनुभव करता हूँ, इस भेद का भी जिन्हें पता नहीं आनन्द में, यह मुनि की दशा है। कहते हैं कि ऐसे **निर्ग्रन्थ गुरुओं की कृपा से ही प्राप्त होता है,....** ऐसे ज्ञानलोचन महानिर्ग्रन्थ सन्त की करुणा से, उनके संग से, उनके परिचय से यह सम्यग्ज्ञानरूपी लोचन प्रगट होता है। यहाँ तो निमित्त से कथन है न? होता है तो इसे स्वयं से; तब ऐसे निर्ग्रन्थ गुरुओं की सेवा और उनकी उपस्थिति इसे होती है। षट्कर्म व्यवहार से बताना है तो किस प्रकार कहें? किसी पर से ज्ञान नहीं होता; होता है तो स्वयं से ही परन्तु उन्होंने जो कहा, उसके श्रवण में लक्ष्य किया और स्वभाव की एकता होने पर जो ज्ञान की विकारता टलकर निर्विकारदशा प्रगट हुई। वह **गुरुओं की कृपा से ही प्राप्त होता है,....** परद्रव्य से... कृपा से तो कोई चीज मिलती नहीं। कोई चीज कृपा भी काम नहीं आती और किसी के..... क्या कहलाता है? श्राप, श्राप और कृपा किसी का किसी को नहीं लगता, सुन तो सही प्रभु!

कुन्दकुन्दाचार्य जैसे ने पाँचवीं गाथा समयसार में कहा — ओहो! हमारे गुरु ने हम पर अनुग्रह / कृपा करके हमें शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया है। समझ में आया? ऐसा भक्ति का प्रहलाद उस गुरु के प्रति उसे आये बिना नहीं रहता। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने शुरुआत की। **ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो** कहने से पहले पाँचवीं गाथा में (कहा)

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

अरे...! जीवों! हमारे गुरु ने और सर्वज्ञ की परम्परा से हमारे गुरु ने हम पर बहुत मेहरबानी की और अनुग्रह करके, कृपा करके हमें शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया। उनके निमित्त से-प्रसाद से हमें यह अनुभव प्रगट हुआ है। समझ में आया? उसका बहुमान उन्हें आये बिना नहीं रहता। हुआ है तो स्वयं के उपादान, शुद्ध उपादान के आश्रय से, परन्तु उस समय ऐसे उपदेश कथन उनके थे, उसके प्रताप से होता है — ऐसा बहुमान उन्हें आये बिना नहीं रहता।

ज्ञानरूपी नेत्र निर्ग्रन्थ गुरुओं की कृपा से.... श्रीमद् कहते हैं न?

जिन प्रवचन दुरगम्यता थाके अति मतिमान,
अवलंबन श्री सद्गुरु सुगम अने सुखखाण।

जिन प्रवचन दुरगम्यता.... इस प्रवचन के कथन की पद्धति व्यवहार की-निश्चय की, असद्भूत व्यवहार, सद्भूत व्यवहार कितने पहलू की बात; निमित्त की, उपादान की, इसके पहलुओं का पार (नहीं मिलता) **जिन प्रवचन दुरगम्यता थाके अति मतिमान,** अकेला विकल्प और तर्क का करनेवाला, सत्य को समझे बिना करने जाये तो थक जायेगा। इसमें कुछ पार नहीं पाया जाता। समझ में आया? **अवलंबन श्री सद्गुरु...** सर्वज्ञ परमात्मा, सन्त या धर्मात्मा इस प्रवचन की दुर्गमता को सुगम करके बतलाते हैं। ऐसे जो सद्गुरु वे ही इसके सुगम और सुख खान हैं। ज्ञानी के बिना उसका पता-अन्तर का (पता) नहीं मिलता। इसलिए **निर्ग्रन्थ गुरुओं की कृपा से ही प्राप्त होता है, इसलिए ज्ञान के....** समझ में आया?

है न पाठ में है न? '**गुरोरेव प्रसादेन**' पाठ में है। '**प्रसादेन**' क्या करे? भाई! विवाद करे तो पार नहीं आवे, बापू! यह प्रसाद है भी सही और प्रसाद नहीं भी है। आहा..हा..! अरे प्रभु! शान्त हो, शान्त हो, यह ऐसे झगड़े से पार नहीं आता। आचार्य स्वयं कहते हैं, आगे अन्तिम गाथाओं में आगे कहेंगे। जितने कर्म के कारण विकल्प आदि उठें वे मेरे स्वरूप में हैं ही नहीं। इसी-इसी में अन्तिम स्तुति करेंगे। पहले सारांश लिया है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान से श्रावक का चारित्र शुरु किया है, अन्तिम गाथा भी यह ले ली है। समझ में आया?

है न अन्तिम? देखो! कितनी गाथा है? यह ६१ वीं है, देखो! ६१, ६१, ६२ गाथा है न? **ज्ञानी अपनी आत्मा की इस प्रकार भावना करता है।** बीच का व्यवहार समझाया। पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से शुरु किया है और फिर यह बतलाया, देखो!

कर्मभ्यः कर्मकार्येभ्यः प्रथग्भूतं चिदात्मकम्।
आत्मानं भावयेन्नित्यं नित्यानन्दपदप्रदम् ॥६१॥

है? **कर्मों से तथा कर्मों के कार्यों से....** यह सुनने का विकल्प उठता है, वह कर्म का कार्य है - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? **सर्वथा भिन्न,...** मेरा आत्मा। श्रावक ऐसा मानता है, यह कर्म जड़ और उसके भावक से उत्पन्न हुआ विकल्प और

विकार दया, दान, भक्ति... यह देखो! भक्ति वर्णन कर वापस उत्थापित किया। दृष्टि में इस विकल्प का कार्य मेरा नहीं। आहा...हा...! सन्तों की शैली भी अलग प्रकार की! समझ में आया? **और चिदानन्द चैतन्यस्वरूप तथा अविनाशी, और आनन्दस्वरूप स्थान को देनेवाले आत्मा का ज्ञानी को सदा चिंतवन करना चाहिए।** लो! यहाँ कहते हैं गुरु का प्रसाद। यहाँ कहते हैं कि सुनने का विकल्प, वह कर्म का कार्य है। समझ में आया? वह तो निमित्त से वहाँ बात की है। यहाँ वास्तविक निश्चय का स्वरूप है, वह यहाँ समझाया है। कर्म का कार्य। फिर कहते हैं षट्कर्म में गुरु सेवा, जिनेन्द्र की भक्ति कर। यहाँ कहते हैं कि वह विकल्प है, वह कर्म का कार्य है; स्वभाव का कार्य नहीं। आहा...हा...! गजब बात भाई! एक के एक अध्ययन में यह दो बातें, भाई! दोनों यथार्थ हैं। सुने तब न, बापू! जिस स्थिति में व्यवहारनय का जहाँ कथन हो, उसे उस प्रकार से जानना चाहिए और जहाँ निश्चय का सत्यार्थ हो, सत्यार्थ (कथन) हो, उसे वैसा जानना चाहिए।

यहाँ कहते हैं कि **निर्ग्रन्थ गुरुओं की कृपा से ही प्राप्त होता है,...** वहाँ कहते हैं कि इनकी कृपा से तो नहीं परन्तु विकल्प की कृपा से आत्मा प्राप्त नहीं होता। समझ में आया? **इसलिए ज्ञान के आकांक्षी मनुष्यों को....** ज्ञान के अभिलाषी आत्माओं को **भक्तिपूर्वक गुरुओं की सेवा, वंदना आदि करनी चाहिए।** द्वेषपूर्वक नहीं, ऐसा। वैसे तो अनन्त बार की है। यहाँ तो निमित्त का बहुमान सत्यार्थ के भान में रहकर, **मनुष्यों को भक्तिपूर्वक...** श्रावकों को गुरु की **गुरुओं की सेवा, वंदना आदि....** स्तुति, भक्ति, **करनी चाहिए।** करनी चाहिए.... व्यवहार के कथनों की शैली समझाने को इसी प्रकार की बात होती है। अब १९ वीं (गाथा)।

श्लोक - १९

ये गुरुं नैव मन्यन्ते तुदपास्तिं न कुर्वते।
अंधकारो भवेत्तेषामुदितेऽपि दिवाकरे॥१९॥

अर्थ : जो मनुष्य, गुरुओं को नहीं मानते हैं और उनकी सेवा वंदना नहीं करते हैं, उन मनुष्यों के लिए सूर्य के उदय होने पर भी अंधकार ही है॥१९॥

श्लोक १९ पर प्रवचन

देखो! महासन्त हैं। जगत की करुणा के लिये श्रावक का वर्णन 'उपासक संस्कार', श्रावक के संस्कार, श्रावक का आचार, श्रावक का अनुष्ठान — ऐसा, उसे षट्कर्म का अनुष्ठान हमेशा होता है। हमेशा गुरु की सेवा करे। समझ में आया? **जो मनुष्य गुरुओं को नहीं मानते हैं....** महासन्त परिग्रह रहित दिगम्बर सन्त मुनि बाह्य और अभ्यन्तर में छठवीं भूमिका-तीन कषाय का नाश — ऐसे भाव सन्त जो पंच परमेष्ठी में शामिल हैं, जिन्हें गणधर देव भी नमस्कार करते हैं। समझ में आया?

गणधरदेव, णमो लोए सव्व साहूणं — पाँच पद का स्मरण, चौदह पूर्व की रचना करने से पहले, बारह अंग की रचना करने से पहले इस पाँच नमस्कार को स्मरण करते हैं। कौन? गणधरदेव। णमो लोए सव्व साहूणं - हे सन्त! तेरे चरण में (नमस्कार हो)। गणधर कहते हैं, वे तीर्थंकर के बजीर, तीर्थंकर धर्मराजा के दीवान, उसी भव में मोक्ष जानेवाले छद्मस्थ हैं। बारह अंग की रचना करते हैं, (तब बोलते हैं), णमो लोए सव्व आइरियाणं - सव्व लोए आता है या नहीं इसमें? पाँचों में आता है। धवल में आता है। णमो अरिहंताणं, इसमें भी आता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, धवल में आता है। णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आइरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं — इन पाँच पद में जो भावलिंगी सन्त, जिन्हें आत्मा के अमृत के फव्वारे प्रस्फुटित हुए हैं, अन्दर से (प्रस्फुटित हुए हैं) उन्हें कहते हैं, उनकी कृपा के बिना सम्यग्ज्ञान नहीं

होता। उन्हें नहीं मानते, कितने ही ऐसा कहते हैं, बाह्य द्रव्यलिंग का भी ठिकाना नहीं और व्यवहार का भी ठिकाना नहीं और हमें गुरु नहीं मानते। परन्तु गुरु, वह गुरुपद में हो उसे माने या गुरुपद में न हो उसे ? काकाजी ने कहा, वहाँ किशनगढ़ में, पता है ? कि ऐसे है तो मुनि भक्त परन्तु अपना कोई विरोध करे तो हम इनकार करते हैं... उनके मकान में। समझ में आया ?

बापू ! यह तत्त्व ही कोई प्रकार अलग है। ऐसे लोग मान बैठें, उसके अनुसार यह बाह्य लिंग किया और यह व्यवहार का भी ठिकाना नहीं, उनके लिये आहार-पानी बनावे, चौका बनावे और मुनि माने वह तो भ्रष्ट... भ्रष्ट है। व्यवहार में भ्रष्ट है, निश्चय में तो भ्रष्ट है ही। उसकी यहाँ बात नहीं है। ओहो..हो ! सच्चे सन्त मुनि, आहा...हा... ! भावलिंग जो परमेष्ठी पद में शामिल हुए, जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँचे जिनके चरण में ऐसे सन्त को नहीं मानते।

उनकी सेवा वंदना नहीं करते हैं.... उनकी सेवा और वंदन, भक्ति नहीं करते। **उन मनुष्यों के लिए सूर्य के उदय होने पर भी अंधकार ही है।** सूर्य का उदय होने पर भी उनके लिये तो अंधकार है। ऐसे ज्ञानी सन्त-गुरु, धर्मात्मा, भावलिंगी चारित्रवन्त मिले और सेवा भक्ति आदि न करे तो तेरे लिये तो सूर्योदय अन्धकार के लिये है। तुझे तो अन्धकार कभी मिटे ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया ? ऐसा भाव उसे आता है। समझ में आया ?

जो मनुष्य, परिग्रहरहित.... परिग्रह का-वस्त्र का एक धागा नहीं। अकेली क्रिया की बात नहीं है, जहाँ अन्दर ममता ही मिट गयी है। **परिग्रहरहित तथा ज्ञान-ध्यान-तप में लीन गुरुओं को नहीं मानते हैं....** चैतन्यमूर्ति भगवान के आनन्द में झूलनेवाले सच्चिदानन्द प्रभु के अन्तर भक्त हैं — प्रभु के आत्मा के (भक्त हैं), उन्हें **नहीं मानते हैं तथा उनकी उपासना भक्ति आदि नहीं करते हैं....** अब, यह दूसरे की-परद्रव्य की उपासना से तो पुण्य-बन्ध होता है — ऐसा बारम्बार मोक्षपाहुड़ में और सर्वत्र तुम तो कहते हो; स्वद्रव्य की उपासना से संवर, निर्जरा और मोक्ष होता है। अरे ! सुन न ! बापू ! स्वद्रव्य की उपासना पूर्ण न हो, तब ऐसे गुरु की उपासना आये बिना नहीं रहती। तथापि उसे धर्मी, पुण्य-बन्ध का कारण जानता है। उससे धर्म की — रागरहित जितनी पृथक्दशा स्वरूप की दृष्टिपूर्वक

हुई, उसे संवर-निर्जरा जानता है। इसे संवर-निर्जरा नहीं जानता। व्यवहार से कहते हैं कि संवर-निर्जरा का कारण... अभूतार्थदृष्टि से कहा जाता है। ओहो...हो...! समझ में आया?

शुद्धस्वभाव के आश्रय से संवर-निर्जरा प्रगट हुए, वह निश्चय और यथार्थ है। उसमें राग की मन्दता आयी, भक्ति आदि की सेवा आदि का शुभभाव (आवे), उसे भी संवर का कथन दो नय चले, तब दो नय के कथन में यह भी एक कथन साथ आता है। परन्तु वास्तव में संवर तो एक ही प्रकार से होता है। इस निमित्त से संवर नहीं होता परन्तु संवर के कथन दो प्रकार से चलते हैं। वैसे निर्जरा के कथन दो प्रकार से चलते हैं। निर्जरा दो प्रकार से नहीं है। शुभभाव भी संवर और निर्जरा का कारण तथा शुद्धभाव भी संवर और निर्जरारूप — ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। कथन की पद्धति आवे, तब दो प्रकार से कथन आते हैं। कथन / निरूपण दो प्रकार से हैं; वस्तु दो प्रकार से नहीं। समझ में आया? पुस्तक-वुस्तक नहीं है पद्मनन्दि? कहो, समझ में आया?

तथा उनकी उपासना भक्ति आदि नहीं करते हैं, उन पुरुषों के अन्तरंग में अज्ञानरूपी अंधकार.... उन पुरुषों को अज्ञानरूपी अंधकार **सदा विद्यमान रहता है...** भान-सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने का जो निमित्त, उसका बहुमान नहीं, उसका बहु आदर-सत्कार नहीं। अरे! उसे तो ऐसा कहते हैं — आत्मसिद्धि में तो ऐसा आता है न 'वह तो प्रभु ने दिया' हे प्रभु! तुमने आत्मा हमें दिया — अज्ञानी ऐसा बोलते हैं। समझ में आया? भक्ति उछाला मारती है (ऐसा कहते हैं)। यह दिया अर्थात् जो स्वरूप जिस प्रकार से आत्मा निर्विकल्प शुद्ध था, वह हमें पता नहीं था। वह खबर आपने दी, इसलिए आपने ही हमें दिया — ऐसा भक्तिवाला उछलकर कहे बिना नहीं रहता। समझ में आया? ऐसा आता है न यह?

क्या प्रभु चरण निकट धरूँ? आत्मा से सब हीन;
वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तु चरणाधीन॥

लो! समझ में आया? आत्मा का भान होकर शिष्य, गुरु को कहता है। क्या प्रभु चरण निकट धरूँ? और किस प्रकार भक्ति तथा पूजा, किस प्रकार से गुरु करूँ? आपके प्रताप से हम संसार से तिर गये — ऐसा आचार्य कहते हैं। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती

गोम्मटसार में कहते हैं। ओहो! गुरु! आपके चरणकमल की सेवा से संसार समुद्र तिर गये हैं। कहो, यह कथन? भाई! बापू! जिस प्रकार से व्यवहार के कथन हों, उन्हें समझना चाहिए और एक ओर कहते हैं कि तीन काल-तीन लोक में परद्रव्य के आश्रय का विकल्प जो उठता है, वह पुण्यबन्ध का ही कारण है; संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण बिल्कुल नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु : डंके की चोट ऊपर...

उत्तर : डंके की चोट ऊपर। एक ओर ऐसा कहे। किस प्रकार इसे मेल करना? मेल ही है सब, सुन न! कथन की पद्धति दो नयों की चलती है, उसमें एक नय का वास्तविक स्वरूप यथार्थ है, दूसरे नय का कथन वह उपचारिक है — ऐसे दोनों को समझे बिना उसका मेल नहीं खायेगा। कहो, समझ में आया?

इसलिए सूर्य के उदय होने पर भी वे अंधे ही बने रहते हैं। चैतन्य सूर्य स्वभाव ऐसे गुरु मिले और यदि यह ज्ञान, उपासना और सेवा न करे (तो वह) विद्यमान सूर्य (होने पर भी) अन्धा है, ऐसी भक्ति श्रावक को आये बिना नहीं रहती। कहो, समझ में आया? देखो न! कितनी भक्ति! वह नहीं आता? क्या? एकीभावस्तोत्र, वह न? वह कुष्ट... कुष्ट... वादिराजमुनि को कुष्ट था, श्रावक प्रतिदिन भक्ति करता, ज्ञानी था। किसी ने राजा से चुगली की कि साहेब! यह कोढ़ी इसके गुरु, उन्हें स्पर्श कर आपके गाँव में चेप लगाता है, आपके पास बैठता है। अतः राजा ने पूछा — क्यों भाई? नहीं, साहेब! हमारे गुरु कोढ़ी होते ही नहीं। उसे ऐसा अरे..रे! हे नाथ अभी यह क्या होगा? हमारे गुरु कुष्टी नहीं। तब कहा सबेरे दर्शन करने आयेंगे। पधारना।

वह वहाँ गुरु के समीप जाता है प्रभु! ऐसा कहा है, हों! जैनशासन की सेवा के प्रताप से... सहज मेल खाता है न, मेल खाता है, उसमें स्तुति की, स्तुति की, ऐसी स्तुति की, वादिराज! हे नाथ! जिस गर्भ में, माता के गर्भ में आप आते हो, तब उनकी नगरी स्वर्ण की होती है और हमारे हृदय में आओ और शरीर न बदल जाये तो तुम कैसे भगवान? समझ में आया? हे त्रिलोकनाथ! जहाँ तुम्हें माता के गर्भ में आना हो, उस गर्भ को तो देव सुधारते हैं परन्तु उनकी नगरी स्वर्ण की-गढ़ की बनती है। इसी प्रकार प्रभु! हम हमारे

हृदय में (आपको) पधराते हैं और यह शरीर कुष्टवाला रहे, यह नहीं हो सकता। वह तो सहज पुण्य के कारण से, हों! वह कोई विकल्प की स्तुति की, इसलिए हुआ नहीं परन्तु पूर्व के पुण्य का योग ही ऐसा था कि शरीर के परमाणुओं को पलटने का काल था।

यह इसमें भी गड़बड़ करते हैं कि मानो भक्ति के भाव से यह होता है। अरे! क्या विकल्प से होता होगा? एक रजकण का परिवर्तन क्या आत्मा के आधीन है? परन्तु पूर्व के पुण्य और शासन की महिमा तथा शोभा रहनी है; इसलिए जहाँ ऐसी स्तुति करते हुए (कहते हैं), प्रभु! परन्तु यह नहीं होता, हों! सोने के गढ़ में आप आओ... अरे! माता के गर्भ में रत्न के सन्दूक जैसे में... और प्रभु! हम आपको यहाँ पधराते हैं, एकदम परमाणुओं का संक्रमण होने का काल था तो पलटकर स्वर्ण जैसा हो गया, लो! वापिस एक जरा रखा, हों! फिर वह झूठा न पड़े, जो चुगलीखोर है, वह झूठा न पड़े।

सबेरे (राजा) दर्शन करने आया। ओहो! शरीर तो बहुत महा सुन्दर है। किसने ऐसा (कहा)? नहीं, राजन! यह था तो ऐसा कुष्टी, देखो! यह एक नमूना। ऐसा ही शरीर था, थोड़ा सा कुष्ट बतलाया परन्तु इस प्रकार बन गया। शरीर की स्थिति (हो गयी); इसलिए श्रावक भी हमारी भक्ति करनेवाला है, वह झूठा नहीं पड़ा और वह (चुगलीखोर) भी झूठा न पड़े। ऐसा मेल पूर्व के साता के उदय के कारण हो जाता है। वह कर्तृत्वबुद्धि से नहीं हुआ है। आहा...हा...! गजब बात, जंचती नहीं, हों!

मानतुंग आचार्य ने स्तुति की, ताले टूट गये। स्तुति का विकल्प वहाँ ताले तोड़ता होगा? विकल्पकर्ता और ताले टूटना, वह कर्तव्य होगा? दोनों को कर्ता-कर्म सम्बन्ध होगा? तीन काल में नहीं; परन्तु ऐसे काल में पुण्य का संचार होकर उस प्रकार से पलटने का काल और ताले टूटने का, हों! इसका समय था (तो) टूट गया। बापू! वस्तु की स्थिति तो ऐसी है। फिर भक्तिवाले तो अनेक प्रकार से भक्ति को बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं परन्तु उसका यह आशय रखकर। यह आशय रखे बिना कर्ता-कर्म मान ले कि हमारे भाव से ऐसा हुआ, भाव (होवे और) ऐसा न होवे तो? न होवे तो क्या करना? समझ में आया भाई! यह सब आता है न? वादिराज का यह उनका...

यह सीताजी का लो न! सीताजी का ब्रह्मचर्य! आहा...हा...!.....सब चिल्लाते हैं।

लक्ष्मणजी... अरे! नाथ! यह रहने दो, हों! सीताजी के लिये यह अग्नि... (राम कहते हैं) नहीं, एक बार तो परीक्षा देनी पड़ेगी। परीक्षा दिये बिना घर में नहीं रहे। गाँव में कोलाहल है। अभी राज करने की वृत्ति टूटी नहीं है; इसलिए प्रजा को प्रतिकूल होकर नहीं रह सकेगी परन्तु यह (अग्नि परीक्षा) ? (सीताजी कहती हैं) हे अग्नि! वहाँ अग्नि सुनती होगी ? यदि मेरा ब्रह्मचर्य पक्का हो और परपुरुष को विकल्प में न लिया हो तो जलाना नहीं, शासन की निन्दा होगी और यदि दूसरे पुरुष को विकल्प में लिया हो तो जलाकर राख कर देना। इसका अर्थ स्वयं का जोर है न पुरुषार्थ का! ब्रह्मचर्य का! और पुण्य का योग ऐसा कि देव ने आकर (पानी) किया। वहाँ विकल्प के कारण वहाँ पानी हुआ और अग्नि ऐसी (शान्त) हुई ? बापू! यह जड़ की परिणति का काल है। जगत को (बात) जमती नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? उसे (ऐसा लगता है) मानो इस ब्रह्मचर्य के कारण (हुआ) अरे! कितने ही ब्रह्मचारी मर गये। सूली पर चढ़ाकर मार डाले। क्या है यह ? पुण्य का उदय नहीं था और उन परमाणुओं के पलटने का प्रसंग नहीं था। धर्मी को कर्ताबुद्धि नहीं होती परन्तु ऐसे प्रसंग में ऐसा हुआ, इसलिए इससे यह हुआ ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। कहो, समझ में आया ?

अतः भव्य जीवों को चाहिए कि वे अज्ञानरूप अन्धकार के नाश करने के लिये गुरुओं की सेवा करें। देखो, अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने के लिये गुरु की सेवा करे। एक ओर कहते हैं कि अज्ञान का नाश आत्मा के-द्रव्य के अवलम्बन बिना तीन काल में नहीं होता। देखो! यह कथन की पद्धति! अरे... ! प्रभु! दो नय की कथन की (पद्धति) जैसा है, वैसा नहीं जाने तो यह तेरे अन्दर के भ्रम के डौल नहीं निकलेंगे और भ्रम टले बिना तुझे धर्म तीन काल में कहीं नहीं होगा। यह गुरु की बात की।

श्लोक - २०

ये पठन्ति न सच्छास्त्रं सद्गुरुप्रकटीकृतम्।
तेऽन्धाः सचक्षुषोऽपीह संभाव्यन्ते मनीषिभिः ॥२०॥

अर्थ : जो मनुष्य उत्तम और निष्कलंक गुरुओं से प्रगट किये हुए शास्त्र को नहीं पढ़ते हैं उन मनुष्यों को विद्वान पुरुष नेत्रधारी होने पर भी अन्धे ही मानते हैं ॥२०॥

श्लोक २० पर प्रवचन

अब, स्वाध्याय, स्वाध्याय करने का.... हमेशा श्रावक स्वाध्याय करे। ऐसे का ऐसे यों का यों करके दो पृष्ठ फिरा जाये ऐसा नहीं। यहाँ बहुत आते हैं कि हमारे नियम है कि स्वाध्याय (करना), इसलिए दश लाईन (पढ़) जाते हैं, यों ही उल्टी-सीधी। ऐसा नहीं होता। स्वाध्याय शान्तचित्त से, एकान्त में.... न हो तो श्रवण में, साधर्मी होवे तो साथ में अथवा नहीं तो अकेला, शान्ति... स्वाध्याय का काल एक दिन में प्रतिदिन श्रावक निकालता है। समझ में आया? वह बहियाँ पूरे दिन संसार में कैसे फिराया करता है? इसी प्रकार शास्त्र के स्वाध्याय का विकल्प प्रतिदिन श्रावक को आये बिना नहीं रहता। तथापि समझता है कि यह राग की मन्दता और पुण्य का कार्य है। आहा...हा...! समझ में आया? कहते हैं।

करुणा से कितनी भाषा की है! अन्धे... अरे प्रभु! परन्तु तुम्हें क्या काम है? बापू! ऐसा विकल्प आता है और जगत् की करुणा में (कहा जाता है)। अरे! अन्धे हो? बापू! तुम्हें ज्ञानी मिले और तुम सत्शास्त्र में स्वाध्याय की फिर बात करते हैं। देखो **जो मनुष्य उत्तम और निष्कलंक गुरुओं से प्रगट किये हुए शास्त्र को....** देखा, शास्त्र की व्याख्या की। मिथ्यादृष्टि द्वारा कथित शास्त्र, अज्ञानियों द्वारा कथित शास्त्र, वे शास्त्र हो सकते ही नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा देवादिदेव द्वारा कथित जो भाव उस तद्नुसार जो गुरु समझे, उन्होंने रचे जो शास्त्र। लो! किस शास्त्र की स्वाध्याय करनी?

जो मनुष्य **पठन्ति न सच्छास्त्रं सद्गुरुप्रकटीकृतम्।** धर्मात्मा द्वारा कथित, ज्ञानी द्वारा कथित शास्त्र। वैसे तो शास्त्र सब कहते हैं-हमारे शास्त्र, हमारे शास्त्र। मिथ्यादृष्टि के द्वारा कथित शास्त्र, शास्त्र ही नहीं हैं। उसके अभिप्राय में जहाँ विपरीतता है, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का भी जिसे पता नहीं है, उसके कथन में सच्चा तत्त्व कभी नहीं आ सकता। **जो मनुष्य उत्तम और निष्कलंक गुरुओं....** इनसे प्रगट किये हुए... समझ में आया? **सच्छास्त्रं** है न? **शास्त्र को नहीं पढ़ते हैं....** ऐसे शास्त्र का अभ्यास, वाँचन, मनन, ध्यान, अनुप्रेक्षा बारम्बार शास्त्र का (अभ्यास) नहीं करता, **उन मनुष्यों को विद्वान पुरुष नेत्रधारी होने पर भी अन्धे ही मानते हैं।** अन्धे हैं; परन्तु दुकान की बहियाँ देखता होवे तो? पूरे दिन देखे। यह अपने को समझ में नहीं आता। किसका परन्तु तेरे व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। कहो, समझ में आया? शास्त्र का स्वाध्याय प्रतिदिन गृहस्थाश्रम में घण्टे, दो घण्टे, चार घण्टे इसे बराबर निवृत्ति लेकर प्रवचन का श्रवण, वाँचन, मनन करना चाहिए।

उत्तम और निष्कलंक गुरुओं से प्रगट किये हुए.... देखा? **शास्त्र को नहीं पढ़ते हैं, उन मनुष्यों को विद्वान पुरुष.... तेऽन्धाः सचक्षुषोऽपीह संभाव्यन्ते मनीषिभिः।** '**मनीषिभिः**' अर्थात् विद्वान्, विचारक। विचारक जीव, जो शास्त्र का अभ्यास नहीं करते, उन्हें विचारक जीव अन्धे कहते हैं। आँख होने पर भी अन्धे। सर्वज्ञ द्वारा कथित वास्तविक शास्त्र क्या है? सच्चे सन्त महामुनि दिगम्बर महामुनि जैसे धर्म के स्तम्भ, धर्म के आधार कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी, पूज्यपादस्वामी, अमृतचन्द्राचार्य महाधर्म के स्तम्भ उनके द्वारा कथित शास्त्रों को जो कोई नहीं पढ़ता, नहीं विचारता, नहीं वाँचता, **उन मनुष्यों को विद्वान पुरुष नेत्रधारी....** बाहर की आँखें होने पर भी वे अन्दर के अन्धे (हैं ऐसा) कहा है। बहुत कठिन काम! मुनि ऐसा कहते हैं? बापू! करुणा से कहते हैं, बापू! भाई! तेरे अन्दर के नेत्र इस शास्त्र के श्रवण, मनन, और स्वाध्याय के बिना नहीं खुलेंगे। तुझे अन्दर में बहुत प्रकार की शल्य रह जायेगी और श्रावक होने के बाद भी शास्त्रों का स्वाध्याय करने से ज्ञान की बहुत निर्मलता होगी; इसलिए शास्त्र का स्वाध्याय कर। ओहो!

एक ओर यह बात की है। समझ में आया? प्रतिदिन कर्तव्य। और एक ओर ऐसा कहते हैं कि आत्मा ज्ञानस्वरूप चिदानन्द का निर्विकल्प अनुभव का वेदन हुआ और भान

हुआ, उसे बारह अंग को पढ़ने की कोई अटक नहीं है, क्योंकि बारह अंग का सार ऐसे चैतन्य का अन्तर में भान हुआ है, उसकी धारा बहती है, यह परमार्थ की बात है। समझ में आया ? बारह अंग में स्थूल विषय है और वह तो विकल्प उठता है, उस ओर के पठन में। परन्तु जिसकी धारा अन्तर में ज्ञान की उग्ररूप से वर्तती है, वह पढ़े या न पढ़े, उसके ऊपर उसे बहुत प्रतिबन्ध नहीं है। यहाँ व्यवहारनय के कथन में साधारण श्रावकों को भी सत्शास्त्र का अभ्यास हमेशा होना चाहिए। अरे ! दो कथन कहीं मेल नहीं खाये,... सब मेल खाये परन्तु सुने तब न ? समझ में आया ?

एक ओर सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी हुआ तो कहते हैं श्रुतकेवली हुआ। ले ! किस प्रकार से ? और एक ओर कहते हैं कि बारह अंग का ज्ञान होता है, तब श्रुतकेवली कहलाता है। यह व्यवहार से श्रुतकेवली की बात है। निश्चय से जिसमें से ज्ञान प्रवाह बहता है — ऐसे आत्मा का भान हुआ, इस अपेक्षा से उसे श्रुतकेवली (कहते हैं)। जो श्रुत में कहना है, उस आत्मा का भान हो गया; इसलिए जैनशासन का देखनेवाला हो गया कि पूरा जैनशासन कैसा है ? यह उसके सम्यग्दर्शन और ज्ञान में भान में आ गया है। **सब आगम भेद सु उर वसे।** सम्यग्ज्ञानी को समस्त आगम का भेद हृदय में वर्तता है, उसे किसी का अजानपना नहीं है। **सब आगम भेद सु उर वसे** इस आगम में ऐसा कथन किस पद्धति से ? इसमें किस पद्धति से ? सब ज्ञानी के हृदय में उसका भान होता है। तथापि उस श्रावक को... आहा..! ऐसे शास्त्र की स्वाध्याय उसे आती है। विकल्प आवे और उस प्रकार का स्वाध्याय हमेशा करता है। वह जानता है कि इसमें पुण्यबन्धन का कारण है। स्वरूप में जितना रागरहित स्वभाव की घोलनदशा एकाग्र हुई, उसका नाम संवर और निर्जरा है और ऐसा भाव स्वाध्याय का उसे आता है। कहो, समझ में आता है ?

वस्तु का स्वरूप यथार्थरीति से शास्त्र से जाना जाता है... वस्तु का यथावत् स्वरूप तो शास्त्र से जानने में आता है। **किन्तु जो मनुष्य शास्त्र को न तो देखते हैं...** सम्हालते नहीं कहाँ रखे हैं ? हर रोज रुपये सम्हालते हैं। कितने रुपये ? इस ओर तो सात लाख गिने थे, सात लाख और यह एक लाख बढ़े लगते हैं, पचास हजार का खर्च हुआ है और डेढ़ लाख आमदनी हुई है, नौ लाख हुए - ऐसा इसे इसमें तैरता होता है, वह मूढ़ता

तैरती हो। शास्त्र का स्वाध्याय और शास्त्र का वाँचन नहीं करता, कहते हैं। **जो मनुष्य शास्त्र को न तो देखते हैं और न वांचते ही हैं...** देखता भी नहीं, सामने देखता भी नहीं। बहियों के सामने देखने जाता है। समय नहीं मिलता, समय नहीं मिलता, मरने का भी समय नहीं अभी, फिर ऐसा कहता है। बापू! मरण आयेगा, तब तो एकदम चला जायेगा। अभी समय नहीं क्या? देह की स्थिति पूरी (होने का) काल होगा (तो) एकदम देह छूटकर चला जायेगा। वहाँ रोकने से रूकेगा नहीं। तेरे इंजेक्शन उसे रख नहीं सकेंगे। मरने का (समय) नहीं... अभी तो मरने की फुरसत नहीं - इतना सीजन चलता है - ऐसा करके ऐसा फूलता है। आहा...हा...!

वैसे तो सोने के अण्डे पाँच-पाँच प्रतिदिन जैसे मुर्गी देती है, वैसे दुकान देती है। ऐसी मुर्गी वह मुर्गी है न? ऐसे दुकान पाँच सोने के अण्डे प्रतिदिन देती है अर्थात् हजार-हजार, दो-दो हजार, तीन-तीन हजार की आमदनी। आहा...हा...! परन्तु है क्या? यह सब नरक का खीचड़ा इकट्ठा करना है। समझ में आया? मरे तब वहाँ उसके पास जाकर कहना.... श्वेताम्बर में शास्त्र में ऐसा एक लेख है, इकट्ठे किये हुए ढेरों में... अरे...! लक्ष्मी! तेरे लिए मैंने दिन व्यतीत किये, हों! और अब अवस्था हुई, अब कुछ शरण देगी? रो उसके पास जाकर वहाँ। भाई! बातें आवे तब तो बहुत सब आती हैं। ढेर किये करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़, दस करोड़; अब वहाँ उसके पास पुकार कर कि यह तेरे लिये काल गँवाया है, अरे...रे! अब कोई शरण? अब इस दुर्गति में जाने पर कोई तुझे गिरवी रखे? गिरवी कहते हैं? क्या कहते हैं? गिरवी यह तुझे गिरवी रखकर कुछ... समझ में आया? घरणूं, हमारे यहाँ घेरणे रखते हैं। ऐसा कहते हैं। पैसा होवे और कहीं रखे ऐसे घेरणूं रखते होंगे या नहीं? लड़के को पुकार करना लड़के को कि यह मर जाता हूँ परन्तु अब चला जाता हूँ। अरे! यह तेरे लिये तो सब काल गँवाया और अब कुछ नहीं? पैर दबाते हैं तुम्हारे, लो! परन्तु पैर दबाते हैं, उसमें अन्दर पीड़ा हो चिल्लाने लग जाये। तूने तेरी शरण को देखा नहीं, शास्त्र को सम्हाला नहीं, शास्त्र की ध्वनि अन्दर कान में गूँजी नहीं। समझ में आया?

न तो देखते हैं और न वांचते ही हैं, वे मनुष्य वस्तु के यथार्थ स्वरूप को भी

नहीं जानते हैं... शास्त्र पढ़े बिना... आँखें तो यह है। प्रवचनसार में कहा है न? **आगमचक्षु साहू** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मुनियों की आँखें यह आगम है, आगम उनके दीपक हैं। आगम ऐसा कहता है, व्यवहार से ऐसा कहते हैं, निश्चय से ऐसा कहते हैं, पर्याय ऐसा कहते हैं, द्रव्य ऐसा कहते हैं — ऐसा जो नहीं जानता। **इसलिए नेत्रसहित होने पर भी वे अंधे ही हैं। अतः भव्यजीवों को शास्त्र का स्वाध्याय तथा मनन अवश्य करना चाहिए।**　　(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)